मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता

'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'

—:o.—

लेखक

बा० देवीप्रसाद खत्री बी० ए०, एल० टी०

प्रकाशक—

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

दूसरा संस्करण] अप्रैल १९३८ [मूल्य ।~)

प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक—
श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा,
नागरी प्रेस, दारागंज,
प्रयाग।

समर्पण

पूज्यवर पं० राम नारायण मिश्र बी० ए०

प्रधानाध्यापक

सेन्ट्रल हिन्दू हाईस्कूल काशी

के

चरण-कमलों में
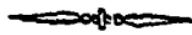
उपोद्घात

शरीर शास्त्र तथा स्वास्थ्य रक्षा के विषय की पुस्तकें बहुधा रूखी हुआ करती हैं। इस पुस्तक में यह यत्न किया गया है कि विषय मनोरंजक रूप में दर्शाया जाय। शरीर शास्त्र की सभी बातों का संक्षेप में निरूपण कर दिया गया है। यद्यपि डाक्टरी के लच्छेदार शब्द नहीं दिये गये हैं तथापि जो कुछ दिया गया है वह ठीक है और युक्ति-संगत है।

देश में स्वास्थ्य नियमों का अज्ञान अधिक है। बहुत से पढ़े लिखे लोगों को अपने अन्दर की बातों का पता नहीं और वे बहुधा ऐसी भूलें करते हैं जिनके लिये उन्हें जन्म भर पछताना पड़ता है। बहुत अच्छी बात हो यदि हमारी भावी आशा के सर्वस्व देश के विद्यार्थी इस विषय का अध्ययन करलें जिससे उन्हें जीवन में दुख न उठाना पड़े। यदि उनको इस पुस्तक द्वारा कुछ भी लाभ हो और वह स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकें तो लेखक अपने इस प्रयत्न को सफल समझेगा।

मैं अपने मित्र श्रीयुत केदारनाथ गुप्त को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इस तुच्छ पुस्तक को अपने छात्रहित-कारी पुस्तकमाला में सम्मिलित कर लिया है।

—देवी प्रसाद खत्री

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ सं०
१—बड़े भाग्य मानुष तन पावा	...	...	७
२—प्रकृति के गुप्त रहस्य	...	...	९
३—प्रारम्भिक अवस्था	...	...	१२
४—अस्थि-पंजर	...	...	१५
५—स्नायु	...		१९
६—रक्ताशय	...	...	२२
७—नाड़ियाँ और रक्त-संचालन	...		२४
८—रुधिर लीला	...	...	२५
९—रुधिर घटक	...	...	२७
१०—रक्त संचालन	...	...	२९
११—रक्ताशय की उचित रक्षा	...	...	३१
१२—अशुद्ध रुधिर	...	...	३३
१३—फेफड़े	...	...	३५
१४—भोजन की नाली	...	...	३६
१५—पाचन कर्म		...	३९
१६—यकृत	...	...	४१
१७—त्वचा	...	...	४७
१८—गुर्दे	...	...	५०
१९—मस्तिष्क	...	...	५३
२०—मस्तिष्क और मन	...	...	५७
२१—नेत्र	...	...	५९
२२—कान	...	...	६२
२३—नाक	...	..	६४
२४—जिह्वा का आनंद	...	...	६५

मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता

"बड़े भाग्य मानुष तन पावा"

इटली के किसी प्राचीन नगर के एक सुनसान भाग में एक बहुत ही पुराना मंदिर बना हुआ है। इस मंदिर की टूटी फूटी दीवारों पर एक परदा लटक रहा है। जहाँ किसी बहुत ही पुराने चित्रकार ने अपनी अनूठी चित्र-विद्या का परिचय दिया है। आज वह चित्रकार संसार में नहीं है। आज यदि कब्र खोदी जाय तो उसकी हड्डियों का भी पता नहीं लगेगा। शताब्दियों से उसको किसी ने देखा नहीं है। पर फिर भी इस चित्र-विद्या के अनुपम-तीर्थ के दर्शन करने के लिये हज़ारों मर्द औरत हर साल आते हैं। और जब कि पुजारी उस बहुमूल्य परदे को, जिससे चित्र छिपा रहता है, उठाता है तो सब के सब बड़े आदर से उस चित्रकार का नाम लेते हैं। उसे धन्य समझते हैं, और कहते हैं कि यही चित्रकार का रचा हुआ "सबसे उत्तम चित्र है!"

जिस व्यक्ति का लोग इतना सत्कार करते हैं वह केवल एक मनुष्य था और उसका यह कार्य भी यद्यपि अद्भुत है तथापि मानवी ही है। पर यदि विचार कर देखा जाय तो स्वयं चित्रकार ही चित्र-विद्या का अद्भुत नमूना था। और यह नमूना उसके रचे हुए चित्र से कहीं बढ़ा चढ़ा था। मनुष्य ही सृष्टि का आदर्श है,

उस दिव्य चित्रकार की विचित्र चित्र-विद्या का परिचय है अर्थात् विधाता की सृष्टि में सर्वोत्कृष्ट है।

अगर हमारे सामने एक सोने की घड़ी लाई जाय जिसके ढकने इत्यादि पर पालिश किया गया हो, जिसका बाहरी भाग अपनी चमक दमक से नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न करता हो, तथा जिस पर तरह तरह की नक्क़ाशी की गयी हो तो हम निस्संदेह कह बैठेंगे कि देखने में तो यह घड़ी बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। पर जब तक कि ढकना खोला न जाय और जब तक उसकी कमानियाँ और कल पुरज़े देखे न जायँ तब तक हम लोग उसके लाभदायक यन्त्र-रचना में दिखलाये हुये अद्भुत चातुर्य तथा कौशल को नहीं जान सकते। ठीक यही दशा मनुष्य के शरीर की भी है। इसके सुन्दर तथा सङ्गठित बाहरी भाग को देखकर हम सदा इसकी प्रशंसा करते हैं। पर जब तक कि हम इसके गहन यन्त्र समुदाय को अवलोकन न करें, इसके भिन्न रगों तथा नसों का, इसके नाना प्रकार के इन्द्रियों और अङ्गों का भली भाँति निरीक्षण न करें और उनके अद्भुत प्रकार से बनने तथा कार्य करने की रीति को न जानें तब तक हम उस दिव्य चित्रकार के चातुर्य तथा कौशल को नहीं जान सकते जिसने सृष्टि के इस सर्वोत्कृष्ट यंत्र (मनुष्य शरीर) को रचा है।

प्रकृति के गुप्त रहस्य

किसी कवि ने क्या ही अच्छे ढंग से प्रकृति के महत्व को दिखलाया है :—

"प्रकृति दुकूल हरा धारण कर, आनन अपना खोल।
मानो हाव भाव बतरावें, डाडी करे किलोल"।

यह बात तो वर्षा ऋतु की हरी-हरी लताओं के सम्बन्ध में कही गयी है परन्तु सच तो यह है कि हर प्रकार के प्राकृतिक पदार्थ हमारे शरीर तथा मन पर प्रबल प्रभाव डालते हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि प्रकृति का बाह्य रूप ही सब कुछ है। इसके बाह्य रूप को देखने से हमारे मन की कली विकसित हो जाती है। हमारा चित्त प्रसन्न हो जाता है और हम आनन्द सागर में गोते खाने लगते हैं। लेकिन जब हम प्रकृति के गुप्त भेदों का पता लगाते हैं, जब हम इसकी आन्तरिक शोभाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं, जब हम इसके छिपे हुये सौंदर्य की अद्भुत छटा का अनुभव करते हैं, तो हमारे हर्ष का वारापार नहीं रहता, हमारे ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं तथा ईश्वर की विचित्र और कौतुकमय लीला का प्रभाव हृदय पर खचित सा हो जाता है।

केवल नेत्रों से हम पदार्थों की सब बातों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। और उस समय भी जब कि इन नेत्रों की सहायता अन्य इन्द्रियाँ भी करती हैं हमें कितना अनुभव हो सकता है!

हम आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, नाक से सूँघते हैं और हाथ से स्पर्श करते हैं, परन्तु फिर भी बहुत सी बातें रह जाती हैं जिनसे हम अनभिज्ञ रहते हैं और जिनके न जानने से हमारे कार्यों में बराबर विघ्न पड़ते हैं।

वैज्ञानिकों ने जब देखा कि रूप तथा बनावट के उस अपार लालित्य का जो कि मनुष्य शरीर मे परिवेष्ठित है, केवल नेत्रों द्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। जब उन्होंने यह जाना कि वे मानव शरीर के उस अपरिमित सौन्दर्य का, बनावट की उस शोभा का और रूप तथा रचना के उन अपूर्व गुणों का जिनका विकाश शरीर मे हुआ है, केवल इन्द्रियो द्वारा पता नहीं लगा सकते। तब उन्होंने शरीर के हर एक अङ्ग को निरीक्षण करने के लिये, प्रकृति के गुप्त रहस्यों को प्रगट करनेवाले उस यन्त्र से, जिसे सूक्ष्म-दर्शन-यन्त्र कहते हैं, सहायता ली तथा यथोचित अभीष्ट भी सिद्ध किया।

किसी तत्ववेत्ता का कथन है कि मनुष्य के अध्ययन के लिये मानव शरीर तथा मानव स्वभाव यही दो विषय काफी हैं। इसी से गत युगों में कितने ही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानों ने अपने सारे जीवन को इसी दिव्य मनुष्य शरीर के अध्ययन मे अर्पण कर दिया। उन्होंने समस्त सामग्री, जो कि कला तथा विज्ञान के द्वारा मिल सकती थी, जुटाई। और अक्लान्त परिश्रम व अपार धैर्य के साथ प्रयत्न किया कि प्रकृति को वाध्य करें जिसमे 'वह' मनुष्य जीवन के कुछ थोड़े से गुप्त भेदों को प्रगट कर दे। शरीर

के प्रत्येक अवयव का निरीक्षण ऐसे प्रयत्न सूक्ष्म-दर्शन-यंत्रों द्वारा किया गया, जिनमें देखने से बालू का महीन से महीन कण भी, परिमाण मे, एक बड़े भारी चट्टान के सदृश मालूम होता है। यही कारण है कि आज हमें शरीर के सब अङ्गों, इन्द्रियों तथा पदार्थों का वर्णन इतने विस्तार से प्राप्य है कि जिन सब के अध्ययन में हम कई जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

इस संक्षिप्त निबन्ध मे हम शरीर के केवल उन थोड़े से प्रधान लक्षणों पर दृष्टि डालेंगे जिनसे कि हमें शरीर मे सम्मिलित भिन्न-भिन्न अवयवों, इन्द्रियों तथा पदार्थों को पहिचानने में सुभीता हो और साथ ही साथ उन विलक्षण प्रवृत्तियों का भी वर्णन करेंगे जिनके द्वारा शरीर के सब हिस्से मानव जीवन को स्थिर रखने में कृतकार्य होते हैं।

प्रारम्भिक अवस्था

यदि कभी कोई मनुष्य नौका द्वारा समुद्र की सैर करे, और जब कि जल बिल्कुल स्थिर प्रतीत हो एक दूरबीन द्वारा समुद्र की वस्तुओं को देखे तो उसे आश्चर्य के समुद्र में डूब जाना पड़ेगा।

जिस समय वह विमल समुद्र जल में २५, ५० वा सौ फ़ीट तक देख सकेगा, जिस समय वह उन विलक्षण जीवों का, जो कि अथाह खारे जल के नीचे विचरते रहते हैं साफ़-साफ निरीक्षण कर सकेगा, उस समय उसे कौतुक तथा आनन्द के वश मग्न हो जाना पड़ेगा।

जिस समय बालों की तरह बिखरे हुए, हरे-हरे सेवारों के खेत के खेत जिनमे बड़े-बड़े केकड़े किलोलें किया करते हैं दिखलाई देंगे, जिस समय कीचड़ों में भी चमकते हुए हर तरह के द्विकोषित तथा एककोषित जीव दृष्टिगोचर होंगे, जिस समय सुन्दर-सुन्दर, लाल-लाल और काले मूँगे चट्टानों के टुकड़े से लगे हुए वा किसी सामुद्रिक पौदे से लपटे हुए नज़र आयेंगे, जिस समय हर तरह के हरे-हरे, लाल-लाल, पीले-पीले, काले-काले स्पंज नेत्रों के संमुख रेंगते हुए दिखलाई पड़ेंगे और जिस समय चट्टानों पर रेंगती वा ज्वार-भाटा के साथ साथ तैरती हुई भाँति-भाँति की अद्भुत तथा विलक्षण मछलियाँ देखने में आयेंगी तो बस यही कहना पड़ेगा कि:—

असित गिरि समस्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे,
सुरतरु वर शाखा लेखनी पत्र मुर्व्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व काले,
तदपि तव गुणाना मीश पारं न याति ॥

यह तो हुआ प्रकृति देवी का गुण गान। आइये अब हम सब लोग दैत्य देवता मिलकर समुद्र मथें और अपनी कल्पना रूपी मथानी द्वारा सबसे पहले उन बड़े-बड़े पीले-पीले स्पंजों में से, जो कि समुद्र की तह में दपादप चमक रहे हैं किसी एक को निकालें और उसके हर एक भाग का भली भाँति निरीक्षण करें। तब तो ज्ञात हो जायगा कि यह एक जालीदार वस्तु है जो कि एक लसदार पदार्थ से ढकी हुई है। परन्तु हमारा आपका निरीक्षण ठीक नहीं, क्योंकि वास्तव में लसदार पदार्थ ही यथार्थ स्पज है। और जिसे हम लोग स्पञ्ज समझे बैठे हैं वह तो केवल इसका अस्थि-पञ्जर मात्र है।

प्राणी वर्ग में यह स्पज सबसे क्षुद्र जीव है। इसमे केवल एक ही प्रकार का पदार्थ है। और इसकी बनावट क्या पिद्दी क्या पिद्दी का शोरबा—नाम मात्र के ही लिये है। परन्तु फिर भी आप इसे जड पदार्थ नहीं कह सकते। यह खाता है, साँस लेता है, अनुभव करता है और मूल रूप मे चेतन पदार्थ के सभी लक्षण दिखलाता है।

अगर मनुष्य शरीर के गत इतिहास का पता लगाया जाय और इसके प्रारम्भिक अस्तित्व का अन्वेपण किया जाय तो

मालूम हो जायगा कि मनुष्य का यह साढ़े तीन हाथ का शरीर प्रारम्भिक अवस्था में (गर्भ में) केवल एक छोटा सा बूंद रहता है जो कि यथार्थ में इस जीवित स्पंज ही के समान होता है। इस छोटे से बुन्दवत् पदार्थ में यद्यपि ज्ञान-तन्तुयें नहीं होती हैं तथापि इसमे श्वास लेने की शक्ति होती है। यद्यपि इसमें अमाशय नहीं होता तथापि इसमे आहार के पचाने की शक्ति होती है। और यद्यपि इसके हाथ नहीं होते, तो भी यह कार्य कर सकता है। सारांश यह कि प्रारम्भिक अवस्था में यह छोटा मोटा ईश्वर ही होता है।

स्पंज प्रारम्भिक अवस्था में लसदार पदार्थ का केवल एक बूँद था। समय पाकर यह बढ़ने लगा। इसने अपने चारों ओर के फैले हुये सामुद्रिक पदार्थों को एकत्रित कर लिया और फिर इन्हीं से एक ऐसा अस्थि-पंजर बना लिया जिस पर कि यह फैल-कर जीवन यात्रा व्यतीत कर सके। मनुष्य का मूल पदार्थ भी पहिले एक बूँद ही के समान होता है। समय पाकर यह भी पर फड़फड़ाता है और बढ़ता है। यह अपने लिये छोटे छोटे छिद्र बनाता है, तन्तु उत्पन्न करता है, सब अगों के सामग्री जुटाता है और अन्त मे पूरा शरीर तैयार कर लेता है। नैयायिक कहा करते हैं कि जो घर में है वही बुंद में भी है। परन्तु मनुष्य शरीर में मामला ही कुछ और है। यहाँ तो सब बुन्द ही की करतूत होती है।

अस्थि-पंजर

यदि हम घर बनाना चाहते हैं तो सब से पहिले उसका ढाँचा तैयार करते हैं। हमारा शरीर भी एक घर के समान है, इसलिये इसको भी एक ढाँचे की आवश्यकता होती है। मगर मकान के ढाँचे और शरीर के ढाँचे में बड़ा अन्तर है। मकान का ढाँचा केवल खड़ा रह सकता है। उसे हिलाने और झुकाने की कोई आवश्यकता नहीं होती, वरन् ढाँचा जितना अटल हो मकान उतना ही मजबूत समझा जाता है। परन्तु शरीर के ढाँचे को कुछ और ही बातों की आवश्यकता होती है। इसे दृढ़ होना चाहिये, इसके अवयवों का सङ्गठन ऐसा लचीला होना चाहिये कि हम जिधर चाहें उधर बिना तोड़े ही इसे झुका सकें। इसके भिन्न भिन्न भागों के जोड़ ऐसे होने चाहिये कि हम उन्हें जिधर चाहें उधर मोड़ सकें। क्योंकि यदि ऐसा न होगा तो हम भी मकान की तरह अटल हो जायँगे, न दौड़ सकेंगे, न चल सकेंगे, न बैठ सकेंगे, न सो सकेंगे। कुतुब साहब की लाट की तरह केवल खड़े-खड़े अचल हो जायँगे और सभी छोटे-छोटे लाट बन जायँगे।

परमेश्वर की लीला अपरम्पार है। वह सर्वान्तर्यामी है। इन सब बातों का उसे ज्ञान है। यह सब कठिनाइयाँ उसे पहले से मालूम हैं। इसीलिये उस महाप्रभू ने ढाँचे के स्थान पर हम लोगों को एक ऐसा अस्थि-पंजर दिया है, जिसमें बहुत सी जुदी-

जुदी हड्डियाँ हैं। इन हड्डियों की संख्या कुल मिला कर २०६ है। केवल खोपडी ही में २२ हड्डियाँ खप गयी हैं। हरेक वाहु में वत्तीस-वत्तीस हड्डियाँ होती हैं। कटि के नीचे कुल मिलाकर कोई ६२ हड्डियाँ होंगी। रीढ़ की २६ हड्डियाँ तो हर कहीं प्रसिद्ध हैं और वक्षःस्थल की छाती विना २५ हड्डियाँ खाये ठण्डी ही नहीं होती। ग्रीवा तथा ठोढ़ी के वीच मे भी एक हड्डी होती है। और विचारे कानों को तो जव सव वँट चुकी थी, अकाल ग्रसित छोटी-छोटी छः हड्डियों पर ही सतोष करना पड़ा।

ये सव हड्डियाँ एक दूसरे से कुछ वन्धनों द्वारा जिन्हें हम जोड़ कहते हैं जकड़ी हुई हैं। इन्हीं हड्डियों के सहारे हम सव काम ठानते हैं। यदि हड्डियाँ न होती तो सारा शरीर पिलपिला ही रहता। शरीर का अच्छा खासा मसनद वन सकता। लिखने के लिये कलम उठाते तो वह हाथों से फिसल जाती। पैरों पर खड़ा होने का यत्न करते तो गलियों के नटखट वालकों के लिये खिलौने हो जाते। हड्डियों ही के द्वारा हमारे अङ्ग दृढ़ रहते हैं, और ठोस हो जाते हैं। यही नहीं, हड्डियाँ हमारे कोमल अङ्गों की रक्षा भी करती हैं। यदि खोपड़ी की हड्डियाँ न होतीं तो हमारे मस्तिष्क की दुर्गत हो जाती। और यदि छाती मे हड्डियों का दुर्ग न होता तो रक्ताशय और फेफड़ों की मौत ही थी।

वचपन में ये हड्डियाँ वहुत मुलायम और लचीली होती हैं। पर जैसे जैसे वच्चा वड़ा होता जाता है ये सख्त और दृढ़ होती जाती हैं। और वुढ़ापे के समय तो इनसे इतना परिवर्त्तन हो जाता है

और ये इतनी निर्बल हो जाती हैं कि सहज ही में तोड डाली जा सकती हैं।

उस समय तक, जब तक कि शरीर का संगठन अपनी सीमा को नहीं पहुँच जाता—अर्थात् २० वा २५ वर्ष की अवस्था तक हड्डियाँ पूर्ण रूप से प्रौढ नहीं होतीं। इसीलिये बचपन ही से इन हड्डियों का ध्यान रखना चाहिये। क्योंकि अस्थि-पंजर का लचीलापन स्पष्ट रूप से बतला रहा है कि यदि शरीर के अंगों को २० वा २५ वर्ष की अवस्था तक यथेष्ट साधन में न रक्खा जायगा तो वे यथार्थ रूप से संगठित न होने पायेंगे और फिर आगे की अवस्था में अङ्गों के दोषों का हटाना प्रायः असम्भव सा हो जायगा। उन लोगों की जो बुरी तरह से सोते व सिकुड सिकुडाये पड़े रहते हैं, झुककर मेंढक की तरह बैठा करते हैं बहुत सी तंग और भद्दे कपड़े पहनते हैं, हड्डियाँ झुक जाती हैं और भद्दी मालूम होने लगती हैं। ऐसे ही लोगों में कुबड़ापन आ जाता है, छाती चिपटी हो जाती है, कंधे कबूतरों की तरह गोल हो जाते हैं, कमर पतली और तंग हो जाती है तथा पैरों में भोंडापन आ जाता है।

भारतवर्ष के अध्यापक तथा अध्यापिकाओं को इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिये। प्रतिशत ९९ बालक ऐसे हैं जो झुके रहते हैं। उचित रीति से बैठना, खड़ा होना, चलना, दौड़ना और सोना उनके लिये १५ मिनट वाले ड्रिल वा जिमनास्टिक्स से कहीं अधिक लाभदायक है। पिता माता तथा अध्यापकों को बराबर यही चिन्ता होनी चाहिये कि बच्चों की हड्डियों में दोष न आने

पायें। "कमर पतली, सुराहीदार गर्दन" उर्दू के कवियों को भले ही प्रिय मालूम हो परन्तु स्वास्थ्य-रक्षा के लिये तो चौड़ी और दृढ़ कमर और ऊँचे उठे ही शिर उपयोगी होते हैं। सिकुड़ कर बैठने और सोने से हड्डियाँ सिकुड़ जाती हैं और हड्डियों के सिकुडने से उनमें मिले हुये अवयव भी संकुचित हो जाते हैं और इस तरह मनुष्य की आयु भी कम हो जाती है।

इसलिये आवश्यक है कि हम लोग बचपन ही से संयम के साथ रहें, जिससे युवा होने पर हमारे शरीर "रूप यौवन सम्पन्न" सुन्दर और गठीले बन जायँ।

स्नायु

यदि कोई मनुष्य अपने बाहु को जोर से मोड़े तो उस भाग में जो कंधों के निकट है मांस का एक उभरा हुआ पिंड दिखाई पड़ता है। पहलवान लोग उसे पुट्ठे कहते हैं, उस पर गर्व करते हैं और सब को दिखलाते फिरते हैं; क्योंकि जितने ही बड़े और मोटे पुट्ठे हों उतना ही तगड़ा और कसरती पहलवान समझा जाता है। परंतु यदि यह मांस-पिंड काट कर देखा जाय तो ज्ञात हो जायगा कि इस पहलवान बनाने वाली कल में कोमल कोमल धागों के बहुत से छोटे छोटे बंडल हैं, इन्हीं बंडलों को स्नायु कहा जाता है और इनके धागों को तंतु कहते हैं।

कुल मिला कर मनुष्य शरीर में २५० जोड़े स्नायु के होते हैं और शरीर के एक ओर जैसे और जितने स्नायु होते हैं दूसरी ओर भी वैसे और उतने ही होते हैं। यह इसी विचार से इस तरह रक्खे गये हैं कि शरीर के अवयवों का संगठन ठीक रहे।

स्नायु का कार्य सिकुड़ कर शरीर में गति उत्पन्न करना है। और इस कार्य को यह अपने सहस्रों तंतुओं से मिली हुई सहायता द्वारा पूरा करता है। इसका काम बड़े महत्व का है। सच पूछिये तो इन स्नायुओं ही की सहायता से हम अपने सारे कर्तव्य पालन कर सकते हैं, यदि स्नायु न हों तो मनुष्य जीवन

व्यर्थ हो जाय, और वनस्पति के समान उसकी भी गति रहे क्योंकि भिन्न भिन्न स्नायुओं के द्वारा ही मनुष्य अपने कार्य कर पाता है। टाँगों की स्नायुओं के द्वारा टाँगों की हड्डियाँ हिलती हैं जिससे कि हम घूमते-फिरते, दौड़ते-फिरते और कूदते फाँदते हैं। हाथ और बाहु की स्नायुओं के द्वारा हम कार्य करते हैं, लिखते हैं, बाजा बजाते हैं और तरह तरह के ऐसे काम करते हैं जो हाथ ही से हो सकते हैं। धड़ के स्नायु शरीर को सीधा रखते हैं और उन गुफाओं के लिये जिनमें कि भीतरी अवयव निवास करते हैं दीवार का काम देते हैं। वक्षस्थल के स्नायु साँस लेते समय हमारे काम आते हैं। कोमल कोमल, छोटे छोटे स्नायुओं के द्वारा हम लोग अपने नेत्रों को भिन्न दिशाओं में घुमा सकते हैं। इनसे भी अधिक कोमल स्नायुओं की सहायता से शब्द-ध्वनि हमारे कानों मे सुनाई पड़ती है। स्नायुओं की ही सहायता से हम लोग अपने चेहरे पर जैसा चाहे वैसा भाव ला सकते हैं। बहुरूपिया और नाटक करनेवाले इन्हीं स्नायुओं की सहायता से सैकड़ों रुपये फटकारा करते हैं। क्रोध, घृणा, ईर्षा, हर्ष, विषाद सब के चित्र इन्हीं स्नायुओं की गति से चेहरे पर चित्रित हो जाते हैं।

शरीर मे गति स्नायु ही के कारण हो सकती है, बिना स्नायु के मनुष्य वैसा ही शक्तिहीन हो जायगा जैसे कि एक वृक्ष या पौधा जो अपने सारे जीवन को वहीं व्यतीत कर देता है जहाँ कि उसका बीज बो दिया जाता है और जड़ पकड़ लेता है।

रक्ताशय

यदि हम अपने दाहिने हाथ को छाती के बायें भाग में पसलियों के नीचे वाले सिरों पर रक्खें तो हमें कुछ धक धक करता मालूम होगा और यदि किसी दूसरे व्यक्ति की छाती पर हम कान लगायें तो कोई वस्तु 'टप-टप' करती हुई सुनाई देगी। जहाँ यह टप-टप, धक-धक हुआ करता है वहाँ एक जीता जागता पम्प है, जिसे रक्ताशय कहते हैं। यह पम्प बचपन से लेकर बुढापे तक धौंकनी की तरह जीवन पर्यंत धक-धक किया करता है और ५ सेकेन्ड के लिये भी अपना काम बन्द नहीं करता। इसके गजट में होली-दिवाली कोई छुट्टी नहीं होती, कभी कभी यह थक अवश्य जाता है जिससे इसकी चाल धीमी पड़ जाती है। कभी कभी यह उत्तेजित भी हो जाता है जिससे इसकी रफ्तार बहुत बढ़ जाती है और कभी तो इसका वेग इतना प्रबल हो जाता है कि इसके धड़कों का गिनना कठिन हो जाता है परन्तु इसकी साधारण चाल ६० से ७० धड़के तक की होती है।

रक्ताशय भी एक प्रकार का खोखला स्नायु है। पुरुष का रक्ताशय स्त्री के रक्ताशय से बड़ा होता है, क्योंकि पुरुष के रक्ताशय का वजन प्रायः पौने ५ छटाँक (१० औंस) होता है और स्त्री के रक्ताशय का भार पाव भर। (८ औंस) मोटे हिसाब

नाड़ियाँ और रक्त संचालन

ये नाड़ियाँ कई तरह की होती हैं। पहिली वे जिनका सम्बन्ध रक्ताशय के नीचे के भाग मे होता है जिन्हे धमनी कहते हैं, दूसरी वे जो कि रक्ताशय के ऊपरी भाग मे मिली होती हैं और जिन्हे खराब खून वाली नलियाँ कहते हैं, यह दोनों श्रेणी की नलियाँ शरीर के भिन्न भागों में साथ साथ लिपटती हुई चली जाती हैं और अत मे बाल की तरह बारीक बनकर (जिन्हे हम केशोपम कहते हैं) एक दूसरे से मिल जाती हैं। इस तरह वस्तुत: दोनों प्रकार की नलियाँ एकत्रित होकर एक ही प्रकार की नलियाँ बन जाती हैं जो सिरों पर मोटी और बीच में पतली हो जाती हैं।

रक्ताशय के नीचे वाला भाग रक्त को धमनियों के द्वारा शरीर के भिन्न-भिन्न अगों में पहुँचाता है और ऊपरी भाग दूसरी प्रकार की नाड़ियों द्वारा फिर अपने पास खींच लाता है। जो रक्त रक्ताशय के बायें पार्श्व से आता है वह खराब खून वाली नाडियों से हो कर दाहिने पार्श्व मे चला जाता है और वह रक्त जो कि रक्ताशय के दाहिने पार्श्व से चलता है फेफड़ों से होकर वामांग के ऊपरी भाग में चला जाता और लौट आता है। छोटे-छोटे छिद्रों द्वारा रक्ताशय के दोनों पार्श्वों मे ऊपरी भाग से नीचे के भाग में रक्त आसानी से आ सकता है परन्तु बिना धमनियों, खराब खून वाली नाड़ियों और केशोपम नालियों की भूल-भुलैयाँ मे घूमे हुये एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व में कदापि नहीं जा सकता।

रुधिर लीला

शरीर की धमनियों तथा नसों में प्रायः ६ सेर (१२ पौंड) रक्त होता है। यदि कोई इस विचित्र द्रव पदार्थ के विषय में अनुसंधान करना चाहे तो उसके लिये सहल उपाय यह है कि अपनी उगलो के सिरे में आलपीन चुभो कर एक बूँद रक्त निचोड़ ले और शीशे के टुकड़े पर फैला कर खुर्दबीन में रक्खे तब उसे मालूम होगा कि उसका रंग बिलकुल लाल नहीं है, बल्कि कुछ-कुछ पीला है और भली प्रकार से निरीक्षण करने से ज्ञात हो जायगा कि रक्त एक प्रकार का स्वच्छ द्रव पदार्थ है जिसमें अगणित छोटे-छोटे, गोले-गोले जीव तैरते रहते हैं जिन्हें हम रक्ताणु कहते हैं।

अधिकतर रक्ताणु चिपटे और गोले होते हैं परंतु सिरों की अपेक्षा बीच में पतले होते हैं। यह इतने सूक्ष्म होते हैं कि यदि ३५०० अणुओं को एक पंक्ति में रक्खा जाय तो उनकी लंबाई केवल एक इंच होगी, इन्हें ही लाल घटक कहते हैं। रुधिर में श्वेत घटक भी होते हैं जो परमाणु में लाल घटक से बड़े होते हैं। प्रति ६०० या ७०० लाल घटकों पर एक श्वेत घटक होता है यह रुधिर घटक हड्डियों की लाल मज्जा, प्लीहा और कफ वाले मांस पिंड तथा और कुछ अवयवों द्वारा बनते हैं।

यह नहीं समझना चाहिये कि रक्ताणु जो बहते हुये रुधिर मे तैरा करते हैं मृत पदार्थ हैं। वरन् विश्वास रखिये कि ये जीवित प्राणी हैं और उतने ही स्वतंत्र तथा पृथक् जीवन व्यतीत करते हैं जितना कि पानी मे तैरने वाली मछली या हवा में उडने वाला पक्षी। प्रत्येक रक्ताणु का जन्म होता है, यह बड़ा होता है और फिर मर जाता है। एक अणु का जीवन ६ दिन का माना जाता है। हर मनुष्य मे प्रति सेकेन्ड ८० लाख अणु मरते हैं और हमारे शरीर को कबरिस्तान बनाने का यत्न करते हैं। परन्तु परमेश्वर की लीला अपार है, शरीर के कुछ अंगों का काम ही यह है कि जैसे ही रक्ताणु मरें उनके मृत शरीर को नष्ट करके रुधिर से निकाल फेंके।

रुधिर घटक

लाल रंग के रक्ताणु फेफड़े से ओपजन को लाते हैं और शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाते हैं। हर एक अणु में इतनी शक्ति होती है कि अपने से कहीं भारी ओपजन का बोझ ले चल सकता है। जब तक रक्ताणु ओपजन से दबे रहते हैं तभी तक रक्त का रंग लाल रहता है। परन्तु जहाँ ओपजन हटा और इनका रंग गहरे नील-लोहित वर्ण का हुआ। यही कारण है कि रक्ताशय से चलने वाली धमनियों का रंग लाल होता है, परन्तु रक्ताशय जाने वाली ख़राब ख़ून की नाड़ियों का रंग गहरा नील-लोहित होता है।

रक्त स्थित श्वेत घटक शरीर का बड़ा काम करते हैं और बड़े ही महत्त्व के पदार्थ हैं। यदि ये हमारे रक्त में न हों तो हम लोगों के जीवन का कभी ही अन्त हो जाय। मनुष्य शत्रुओं से घिरा हुआ है और उनके सब से बड़े शत्रु खटमल और मच्छड़ हैं। कितने ही मनुष्य चारपाइयों पर इन वैरियों के कारण करवटें लिया करते हैं। कितने ही गरीब जो भूसों की कोठरियों में सोते हैं सवेरे उठकर अपना सारा शरीर लाल लाल पाते हैं। कितने ही अमीर रात भर चिराग लिये हुये बिछौनों को आँखें फाड़ फाड़ कर देखा करते हैं। यह बैरी अपने शुंड द्वारा रक्त में भिन्न प्रकार के विषैले कीड़ों को डाल देते हैं और प्रसन्न

होते हैं। यदि इनके पहुँचाये हुये कीड़े नष्ट न कर दिये जायँ तो थोड़ी ही देर में हमारा शरीर इन कीड़ों से भर जाय और हम मृत्यु-मुख में जा पड़े। मगर बाहर से श्वेत घटक जहाँ उन्होंने इन विषैले कीड़ों को देखा नहीं कि जा दबोचते हैं और इन्हें नष्ट कर देते हैं। इतना ही नहीं घावों, सूजनों और फफोलों में यह बराबर पहुँच जाते हैं, जख्म को सुखा देते हैं और स्वाभाविक मरहम का काम कर देते हैं। ये विचित्र सूक्ष्म जीव ईश्वर-प्रेरित बुद्धि द्वारा धमनियों की दीवारों के भीतर रास्ता बना लेते हैं और उन कीटाणुओं का दिन रात पता लगाते रहते हैं जो तंतुओं पर आक्रमण करते हैं। परीक्षा द्वारा देखा गया है, कि कभी कभी फोड़े फुंसियों इत्यादि मे (जहाँ छूत वाले कीटाणुओं की अधिकता रहती है) इन श्वेत घटकों के बड़े बड़े समूह खेमा डाले पड़े रहते हैं। पीब के एक बूँद में इन विचित्र जीवों की संख्या प्राय: बीस करोड़ होती है।

रक्त के तरल भाग में सब प्रकार के तंतुओं का आहार रहता है। इसी भाग में तंतुओं से धुल कर आये हुये मल पदार्थ भी होते हैं जिनके भाग्य में यही लिखा होता है कि यकृत, गुर्दे, तथा अन्य मेहतर के काम करने वाले अङ्ग इनको निकाल बाहर करें। कीटाणुओं के कारण शरीर में विष आता है और स्वस्थ मनुष्य के रक्त का पतला तरल भाग कीटाणुओं को नष्ट कर अमृत का काम करता है।

रक्त संचालन

रक्ताशय का कार्य शरीर में रक्त-सचालन करना है और यह कार्य बड़ी तेजी से होता है यहाँ तक कि हर ३० सेकेन्ड में जितना रक्त कि शरीर में रहता है उतना ही इसमें से होकर निकल जाता है। किसी स्वस्थ अथवा बलवान मनुष्य का रक्ताशय प्रतिदिन ८७५ मन (२०० बैरेल) रक्त पम्प करता है और इतना काम करने में उसकी इतनी ही शक्ति लगती है जितनी कि एक मन नौ नौ सेर वाले एक हजार पत्थरों को जमीन से कन्धे तक उठाने में लगेगी।

रक्ताशय के हर एक धड़के पर रक्त को एक लहर चल पड़ती है जो दूर दूर तक की धमनियों तक पहुँच जाती है। जहाँ कहीं धमनियाँ शरीर के बाहरी भाग से मिली हुई होती हैं वहाँ इस लहर का पता हमें आसानी से मिल जाता है और वैद्य लोग उसे नाड़ी कहते हैं। नाड़ी की गति प्रति मिनट ७० स्फुरण (धड़के) की होती है। छोटे बच्चों में इसका वेग प्रबल रहता है और व्यायाम करने पर भी इसकी चाल बढ़ जाती है।

रुधिर रक्ताशय की बाँई ओर के नीचे वाले भाग से निकलता है और शरीर के भिन्न भागों में स्थित धमनियों में यहीं से प्रवेश करता है। शरीर के भिन्न भागों में इससे गंदा हो जाने पर इसको खराब ख़ून वाली नाड़ियाँ एकत्रित कर लेती हैं और

रक्ताशय के दाहिने ओर के ऊपरी भाग में पहुँचा देती हैं। यहाँ से ये फिर इसी तरफ नीचे के भाग में आता है जहाँ एक बड़ी मोटी धमनी इसको लेकर दोनों फेफड़ों में पहुँचाती है। फेफड़ों में यह शुद्ध किया जाता है और तब ख़राब ख़ून वाली नाड़ियाँ वहाँ से इसे ले आकर बायें पार्श्व के ऊपरी भाग में पहुँचाती हैं। वहाँ से तब उसी तरफ नीचे के भाग में उतरता है फिर धमनियाँ इसको लेकर शरीर के भिन्न भागों में पहुँचाती हैं और यह चक्र ऐसे ही चलता रहता है।

रक्ताशय में लौटने के पहले रुधिर का एक हिस्सा दो प्रकार की ख़राब ख़ून वाली नाड़ियों में से होकर आता है। आमाशय, प्लीहा, तथा अन्य उदरस्थित अंगों में से आया हुआ रुधिर एक बड़ी ख़राब ख़ून की नाड़ी में एकत्रित होता है जो एक दूसरे प्रकार की ख़राब ख़ून वाली नाड़ियों और केशापर्मों के द्वारा इसको यकृत के हर भाग मे पहुँचाती है। यकृत इसमें एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन कर देता है और तब एक ख़राब ख़ून वाली नाड़ी इसको एक बड़ी नाड़ी में पहुँचाती है जहाँ कि शरीर के सब नीचे वाले अंगों का रुधिर आकर जमा होता है और यह नाड़ी फिर सब गंदा ख़ून ले जाकर रक्ताशय के दाहिनी ओर उगल आती है। इसको अंग्रेजी में (portal Circulation) कहते हैं।

रक्ताशय की उचित रक्षा

ऊपर लिखी हुई बातों से मालूम हो गया होगा कि रक्ताशय एक बड़े ही महत्व का अंग है। बिना प्रौढ़ रक्ताशय के न तो कोई स्वस्थ रह सकता है और न चिरंजीवी ही हो सकता है। जिस मनुष्य का रक्ताशय दुर्बल हो वह जीवन यात्रा के लिये उतना ही निकम्मा है जितना कि वह नाविक जो एक छोटे से बेमरम्मत ऐञ्जिन का जहाज़ लेकर अटलांटिक ऐसे महासागर को पार करना चाहे।

रक्ताशय से बढ़कर कोई दानी नहीं, यह शरीर के सब अंगों का अन्नदाता या आहारदाता है। क्योंकि शरीर का कोई भी अंग हो बिना रक्त के बेकार हो जाता है। यदि रक्त का यथोचित संचार न हो ये अस्थियाँ दुर्बल हो जाती हैं, स्नायु कमज़ोर पड़ जाते हैं और प्रत्येक अंग रोग ग्रसित हो जाता है। इसलिये आवश्यक है कि उचित व्यायाम द्वारा इसको पुष्ट किया जाय।

यदि किसी को लिटाकर उसकी नाड़ी की गति गिनी जाय तो उसकी गणना प्रायः ६० होगी, बैठने पर इसकी तादाद ६६ या ६८ हो जायगी और खड़े होने पर यह ७४ या ७५ तक पहुँच सकती है। मगर तेज़ कसरत जैसे दौड़ने और कूदने के बाद नाड़ी का वेग प्रति मिनिट १०० धड़का वा इससे भी अधिक हो जाता है।

रक्ताशय भी स्नायु ही तो ठहरा, उचित व्यायाम इसमें फुरती का सचार करके इसके बल को बढ़ा देता है। रक्ताशय की फुर्ती बढ़ने से शरीर में रक्त तेजी के साथ वितरण होने लगता है जिससे शरीर के सारे कार्य मुस्तैदी के साथ होने लगते हैं।

अत्यंत प्रबल व्यायाम के द्वारा रक्ताशय में अनुचित फुर्ती आ जाती है जिससे कि हानि होने की संभावना है। और इसके कोमल ततुओं और जोड़ों में चोट लग जाने का डर है। जो लोग भारी भारी मुगदर हिलाते हैं उनके रक्त शय में हानि पहुँ-चने का बहुत डर है। बहुत ही हलके मुगदर हिलाना चाहिये।

तम्बाकू, मदिरा और सब प्रकार के मादक द्रव्य रक्ताशय को विशेष हानि पहुँचाते हैं और इसको दुर्बल बना देते हैं। सम्भव है कि प्रारम्भ करने पर थोड़े ही दिनों के लिये रक्ताशय कम-ज़ोर हो जाय, परन्तु अत में इसके तन्तु खराब होकर चर्बी बन जाते हैं और यह सदैव के लिये जवाब दे देता है। हृदय-पीड़ा या (heart fail) होने से जितनी मृत्यु होती हैं, उनमे से अधिकांश के लिये तम्बाकू, मदिरा और मादक द्रव्य ही जिम्मेवार होते हैं।

अशुद्ध रुधिर

रुधिर की शक्ति चार प्रकार से कम हो जाती है :—

(१) यदि ततुओं से एकत्रित होकर बहुत से मलिन पदार्थ इसमें मिल जायँ और शीघ्रता से निकाले न जा सकें।

(२) यदि भोजन के साथ हानिकारक पदार्थ चले आवें।

(३) यदि मादक द्रव्य अथवा और किसी प्रकार के उत्तेजक पदार्थ के सेवन में मनुष्य अति कर डाले।

(४) यदि ततुओं की पुष्टि के लिये पोषक पदार्थ कम मिले।

(५) खाल, फेफड़ों, यकृत, गुर्दा और आँतों के द्वारा रुधिर के अशुद्ध पदार्थ निकाले जाते हैं। इसलिये रक्त को शुद्ध तथा स्वस्थ रखने के लिये हर एक मनुष्य को चाहिये कि अपने इन अवयवों को ठीक रक्खे और ऐसे पदार्थ कभी न खाये पिये जिनका शरीर में उपयोग नहीं हो सकता और जिनका निकालना और नष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है। इस श्रेणी के पदार्थ मादक द्रव्य, तम्बाकू, भिन्न भिन्न प्रकार के उत्तेजक चटपटे मसाले जैसे सरसों, मिर्च, तीखी चटनी इत्यादि हैं जिनका सेवन साधारणतः किया जाता है और जिनसे बड़ी भारी हानि की सम्भावना रहती है।

यदि रात में कोई न सो सके अथवा बिलकुल कम आहार

करके सो जाय तो सवेरे के समय लाल रक्ताणुओं की संख्या में कमी हो जाती है जिससे पता चलता है कि मनुष्य के लिये पौष्टिक आहार तथा पूरी निद्रा दोनों आवश्यक है। न्यूयार्क नगर के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने इस बात का दावा किया है कि वह केवल रक्त ही की परीक्षा द्वारा बता सकता है कि मनुष्य सुख की नींद सोया था या किसी प्रकार के असंयम में आसक्त था।

यदि रक्त को अशुद्ध न होने दिया जाय और उसमें ऐसे पदार्थ यथोचित पहुँचाये जायँ जिनसे शरीर पुष्ट होता है तो सारे अवयव स्वस्थ और बलवान हो जायँ क्योंकि रुधिर ही जन्म देता है, रुधिर ही रोग हर लेता है और सच पूछिये तो रुधिर ही के कारण जीवन है।

फेफड़े

ये रक्त के बहुत से अशुद्ध पदार्थों को हटाते हैं। और इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये उनके अन्दर चारों ओर कोमल पतली पतली झिल्लियों का अस्तर लगा रहता है जो कि अगर फैलाया जाय तो २००० वर्ग फ़ीट से भी अधिक स्थान ढक लेगा। इस झिल्ली के नीचे से प्रति मिनट इतना रक्त निर्मल होने के लिये जाता है जितना कि किसी समय में भी सारे शरीर में पाया जा सकता है। यह रक्त फेफड़ों में अपने विषैले अंश छोड़ देता है और जीवन प्रदान करने वाली ओषजन गैस को सोख लेता है जिसे यह शरीर के हर भाग के तंतुओं तक पहुँचा कर उन्हें जीवित और परिवर्धित बना देता है। फेफड़ों के लिये आवश्यक है कि उनकी वायु बार बार बदली जाय। जब हम कुछ काम न करते हों तो प्रति मिनट १८ या २० बार वायु बदलना आवश्यक है और जब दौड़ते हों या प्रबल व्यायाम करते हों तो इनकी वायु प्रति मिनट ३६ या ४० बार बदलनी चाहिये। फेफड़ों को पुष्ट रखने के लिये खुली हवा में रहना और व्यायाम करना अत्यंत आवश्यक है।

भोजन की नाली

गर्म देशों के गर्म समुद्रों में एक सूक्ष्म जीव होता है जिसके भीतर एक छोटी सी थैली होती है जो रक्ताशय, आमाशय और फेफड़ा इन तीनों का काम करती है। बहुत से सूक्ष्म प्राणियों में रक्ताशय और आमाशय इन दोनों के काम करने के लिये केवल एक ही अवयव होता है, परन्तु मनुष्य शरीर में रक्त-संचालन-स्वासोच्छ्वास तथा पाचन ये तीनों कार्य भिन्न भिन्न अवयवों द्वारा किये जाते हैं। यद्यपि कहने के लिये तो सब लोग यही समझते हैं कि आमाशय ही पाचन कर्म करता है, परन्तु सच पूछिये तो पाचन कर्म के लिये केवल आमाशय ही नहीं है वरन् एक बहुत ही टेढ़ो मेढ़ी प्रायः तीस फोट लम्बी नाली होती है जो कि ओठों से प्रारम्भ होकर धड़ के अन्तिम सिरे तक चली गई है। इस नाली के किनारे किनारे बहुत से भिन्न भिन्न अवयव हैं जो भोजन के पचाने में कुछ न कुछ सहायता अवश्य देते हैं।

इस नाली के ऊपरी सिरे पर दाँतों की दो श्रेणियाँ हैं जो चक्की का काम करते हैं। यहाँ भोजन अच्छी तरह पीसा जाता है इसलिये कि जब भोजन भीतर जाय तो भीतरी अवयव इसको काम में ला सके। जिन पशुओं के मुँह में दाँत नहीं होते उनके आमाशय में बहुत अच्छे दाँत होते हैं जो उनके

भोजन को भली भाँति चबा डालते हैं। जब हम लोगों का जी जल्दी जल्दी खाने को चाहे उस समय हमें स्मरण कर लेना चाहिये कि हमारे आमाशय में दाँत नहीं और यदि भोजन का चबाना पाचन के लिये आवश्यक है तो यह काम भोजन के अन्दर जाने के पहिले ही हो जाना चाहिये। विलायत का प्रसिद्ध प्रधान मन्त्री ग्लैडस्टन हर ग्रास को ३२ बार गिन-गिन कर चबाता था।

जिह्वा भोजन के पीसने के कार्य में बड़ी सहायता देती है। यह भोजन को दाँतों के बीच में बार बार रखती है और मुँह में एक तरफ से दूसरी तरफ घुमाती रहती है जिससे कि भोजन बहुत बारीक और मुलायम पिस जाता है।

मुँह में दोनों ओर छै छै जगह मांस की गिलटियाँ होती हैं जिनसे कि एक प्रकार का साफ द्रव पदार्थ निकलता रहता है जिसे लोग थूक कहते हैं। यही थूक भोजन को नर्म बनाता और इसकी बनावट को बदलने का यत्न करता है।

मुँह के पिछले भाग से एक तंग नली आमाशय तक चली जाती है जो कि छाती की बीच की हड्डी के नीचे के सिरे के ठीक नीचे होता है। यह आमाशय भोजन पचाने वाली नली का केवल एक फूला हुआ भाग है। इसमें प्राय पौने दो सेर (३ पाइन्ट) पदार्थ समा सकता है। इसकी दीवारों में विचित्र विचित्र छोटे छोटे जेब होते हैं जिनमें से जठराग्नि का अर्क निकलता है। आमाशय के नीचे का हिस्सा छोटी आँतों में मिल

जाता है। यह आँते उदर-कुक्षि मे तह की हुई पाई जाती हैं जिनकी लम्बाई २५ फ़ीट के लगभग बताई जाती है।

आमाशय से कई इञ्च नीचे इन छोटी आँतों मे एक छोटा सा छिद्र होता है जिसमे से दो बड़े महत्व के द्रव पदार्थ निकलते हैं जिनमे से एक को अँग्रेजी में (Pancreatic juice) कहते हैं और दूसरे को हम लोग पित्त कहा करते हैं (Pancreatic juice) (Pancreatic) में बनता है जो कि आमाशय के ठीक पीछे हथौड़े के समान एक गिल्टी है। और पित्त तो यकृत में बनता है। यह यकृत आमाशय के दाहिनी ओर होता है और उसके कुछ भाग पर लपटा भी रहता है।

छोटी आँतों के किनारे किनारे बहुत से सूक्ष्म मांस-पिंड भीतर की मुलायम झिल्ली में दबे हुये मिलते हैं। इनमें से भी एक प्रकार का द्रव पदार्थ निकला करता है जिन्हें हम आँतों वाला अर्क कह सकते हैं।

उदर कुक्षि के दाहिनी ओर नीचे की तरफ पहुँच कर छोटी आँतें चौड़ी हो जाती हैं और तब इन्हीं को बड़ी आँतें या कोलन कहते हैं। कोलन की लम्बाई ५ फीट है और यह हमारी भोजन की नली का अन्तिम यंत्र है।

पाचन कर्म

हम ऊपर कह आये हैं कि पाचन कर्म से कुछ द्रव पदार्थों का सम्बन्ध है जिनको लोग थूक, जठराग्नि अर्क, पित्त, (Pancreatic) अर्क और आँतोंवाला अर्क कहते हैं। इन सब का काम भोजन को इस प्रकार घुलाना और बदलना है जिससे कि वह रक्त में मिलने के योग्य हो जाय। इनमें का हर एक द्रव पदार्थ अपने-अपने नियत कार्य करता है जिससे कि भोजन का कुछ अंश किसी बिलकुल भिन्न पदार्थ के आकार में बदल जाता है और इस तरह रक्त में मिल जाने के योग्य हो जाने से तन्तुओं के बनने में सहायता देता है।

थूक भोजन की माड़ी को लेता है और उसमें मिलकर उसे शर्करा बना डालता है। पित्त भोजन के चर्बी वाले भाग को पचाता है और अन्य भागों को भी जब वह पच जाते हैं शरीर में सोख जाने में सहायता देता है। (Pancreatic) अर्क भोजन के तीनों प्रसिद्ध पदार्थ माड़ी, सुफेद और चर्बी पर अपना प्रभाव जमाता है। आँतवाला अर्क ऊपर लिखे सब पदार्थों को तो पचाता है ही परन्तु इनके अतिरिक्त ऊख की शक्कर को भी पचाता है। यहाँ यह बात स्मरण रखना चाहिये कि ऊख की शक्कर को केवल आँतों वाला अर्क ही पचा सकता है। परन्तु यह अर्क भोजन की नली के सब भाग में नहीं होता केवल आँतों ही में निकलता है। इसलिये शक्कर आँतों में ही आकर पचता है।

यदि हम रोटी के एक ग्रास को जब वह पचता हो देख

सकते तो इन अर्कों के अनूठे कामों का पता चलता। जब रोटी दाँतों से अच्छी तरह कूँची और चबाई जाती है तब थूक उससे मिल जाता है और इसको माडी के जितने भाग का शर्करा बना सकता है बना डालता है। कंठ में पहुँचने के बाद जठराग्नि अर्क इस पर अपनी क्रिया प्रारम्भ करता है और रोटी के सफेद लसदार पदार्थ को पचा डालता है। ज्योंही भोजन आमाशय से निकल कर आँतो में पहुँचता है त्योंही यकृत और पित्ताशय सिकुड़ते हैं और इस पर पित्त उगल देते हैं। जो रोटी के अन्दर के तेल को या भोजन में मिले हुये घी और मक्खन ढूँढ़ निकालता है और इन चर्बीदार पदार्थों को मलाईदार पदार्थ बना डालता है। इस मलाई को रक्त तुरन्त सोख लेता है और शरीर के भिन्न भागों में बाँट देता है। तत्पश्चात् भोजन पर (Pancreatic) अर्क की दृष्टि पड़ती है और यह थूक, जठराग्नि तथा पित्त के प्रारम्भ किये हुये कार्य को पूरा करता है। क्योंकि यह तीनों अर्कों की क्रियाओं को उनसे अच्छी तरह कर सकता है। इसके बाद आँतोवा अर्क इस पर आक्रमण करता है, ऊख की शक्कर से मिल कर उसे पचाता है और पचने के बचे खुचे काम को समाप्त कर डालता है।

इस रीति से एक ग्रास भोजन पूरी तरह पच जाता है और तब लाखों छोटे-छोटे भूखे मुख इसे सोख लेते हैं क्योंकि इनका काम पचे हुये भोजन को चूस कर रक्त-वाहक नाड़ियों तक पहुँचाने का होता है। पहिले पहल यह नाड़ियाँ इसको यकृत में ले जाती हैं और फिर वहाँ से रक्ताशय में जहाँ से कि वह शरीर के भिन्न भागों में वितरण कर दिया जाता है।

यकृत

यदि हम यकृत के एक बहुत ही छोटे टुकड़े को एक अच्छी खुर्दबीन से देखें तो पता लग जायगा कि यह सहस्रों छोटे छोटे गोल गोल कोष्ठकों (cells) से बना हुआ है जिनमें से हर एक बड़ी मुस्तैदी से पित्त बनाने के कार्य में लगा रहता है। यकृत की कुल कायनात इन्हीं कोष्ठकों की है। इन्हीं के साथ वे नाड़ियाँ भी हैं जो रक्त लिये हुये इनमें से होकर निकलती हैं और वह नालियाँ भी हैं जो पित्त बनाने वाले कोष्ठकों के बनाये हुये पित्त को एकत्रित कर लेती हैं और फिर एक बड़ी थैली में पहुँचा देती हैं जो यकृत के अन्दर लगा रहता है और जिसे पित्ताशय कहते हैं। यकृत तथा पित्ताशय से एक नली छोटी आँतों तक जाती है जो कि आमाशय के कुछ इंच नीचे आँतों में मिल जाती है। कुल यकृत का भार पौने दो सेर (३½ पौंड) है। यह शरीर में सब से बड़ा मांस पिंड है।

शरीर के सब द्रव पदार्थों में पित्त बहुत ही लाभदायक और अनोखा पदार्थ है। मनुष्यों में और कुत्तों में इसका रंग सुनहला और पीला होता है, बैल में इसका रंग हरा होता है। कुछ रोग ऐसे हैं जिनके कारण मनुष्य हरे रङ्ग का पित्त वमन करते हैं और इससे लोग अक्सर यह समझ लेते हैं कि मनुष्य का पित्त भी हरा होता है। परन्तु यह बात ठीक नहीं। वमन किया हुआ

पित्त आमाशय में जठराग्नि अर्क के मिलने से परिवर्तित होकर हरा हो जाता है।

जितने लाभ पित्त से हैं उतने शरीर के किसी भी द्रव पदार्थ से नहीं होते। पहिली बात तो यह है कि यह पाचन शक्ति में सहायता देता है। क्योंकि भोजन के चर्बीदार पदार्थों को यह मलाईदार पदार्थ (Emulsion) में परिवर्तित कर देता है जो शरीर मे बहुत आसानी के साथ सोखा जा सकता है। दूसरा लाभ यह है कि पित्त छोटी आँतों में होने वाले पाचन की सभी क्रियाओं में सहायता देता है। क्योंकि यह जठराग्नि अर्क ऐसे कड़े तेज़ाब की तेज़ी को कम कर देता है। यदि यह इस तेज़ी को न हटाये तो (Parcreatic) अर्क और आँतों वाले अर्क का कोई असर ही न हो। तीसरा लाभ यह है कि इसके ज़ोर से आँते सिकुड़ती रहती हैं जिससे कि भोजन पचता हुआ आगे चलता रहता है। पित्त किसी गुप्त रीति से शरीर की भीतरी झिल्ली को पचे हुये भोजन सोखने में भी सहायता देता है। इसका एक बड़ा भाग उन निःस्सार पदार्थ से भी बनता है जो शरीर के भिन्न भिन्न भागों से एकत्रित हुआ करते हैं। जब यकृत अपना काम ठीक नहीं करता तब इन गन्दे पदार्थों के ढेर लग जाते हैं और मनुष्य को पित्त की बीमारी हो जाती है।

यकृत केवल पित्त ही नहीं बनाता वरन् साथ ही साथ और भी बहुत से कार्य करता है। जैसा पहले कह चुके हैं रक्त का अधिक भाग उदर कुक्षि-स्थित अवयव अर्थात् आमाशय, आँतों,

(Pancreas) और प्लीहा इत्यादि से घूमता हुआ एक बड़ी मोटी अशुद्ध खून वाली नाड़ी में एकत्रित होता है जो इसे यकृत तक पहुँचाती है। और वहाँ से यह शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में वितरण कर दिया जाता है। इस संगठन से प्रयोजन यह है कि यकृत इस योग्य हो जाय कि यह भोजन के ऐसे पदार्थों के (जो कि काम समाप्त होने के पहले ही सोख लिये गये थे) पचाने की क्रिया को समाप्त कर सके और विशेषकर रक्त से उन हानिकारक पदार्थों को निकाल सके जो भोजन के साथ सोख लिये गये हैं।

यकृत का एक सब से बड़ा काम शक्कर के उस बड़े भाग को, जो कि बहुधा हम भोजन के साथ खा जाते हैं और जो कि पचाने की क्रिया में माड़ी वाले पदार्थों और थूक के संयोग से बनता है, रक्त से निकालना और अपने भीतर उसे मानवी माड़ी (animal starch) के रूप में एकत्रित किये रखना है। अगर यह माड़ी साधारण रक्त-संचालन में सब एक साथ पहुँच जाय तो शरीर के बहुत से अवयवों को घोर कष्ट पहुँचने की संभावना हो जायगी। इसी कष्ट से बचाने के लिये यकृत इस माड़ी के एक बहुत बड़े भाग को अपने अन्दर के गोदाम में बन्द रखता है। और जब हम भोजन नहीं करते रहते तब थोड़ा-थोड़ा करके रक्त में पहुँचाता रहता है। इससे यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि यदि कोई महाशय जितनी शक्कर कि उनका यकृत अपने गोदाम में रख सकता है उससे अधिक मिठाई खाते हैं तो यकृत को

बड़ी हानि पहुँचती है और शक्कर से ठसे रहने के कारण यह शरीर के प्रति अन्य कर्तव्यों का पालन बड़ी कठिनाई से कर सकता है।

शिकागो के अध्यापक एलफ्रेड सी० क्राफटन के कुछ नये प्रयोगों से पता चलता है कि यकृत यूरिक एसिड के नष्ट करने में भी अक्सर लगा रहता है। हर २४ घटे में जितना यूरिक एसिड शरीर में बनता है उन सब के पाँचवे हिस्से को यह यूरिया बना देता है। जब कभी हम शक्कर तथा चरबी वाले पदार्थ अधिक खाते हैं या भोजन के साथ सरसो, मिर्च, कड़वी चटनी, और मसाले खूब उड़ाते हैं। या शराब चाय, काफी और तम्बाकू का सेवन करते है, या अच्छा खाना भी बहुत डट कर खा जाते हैं, तब हमारे यकृत को इतना काम करना पड़ता है कि जिससे दब कर उसमे यथेष्ट यूरिक एसिड को नष्ट करने की शक्ति बिलकुल नहीं रह जाती और तब यह विपैला पदार्थ शरीर में बढ़ता जाता है और परिणाम स्वरूप, गठिया, वातशूल, कप-शीलता, अग विकृत, फालिज इत्यादि बहुत से रोग उपहार मे अर्पण करता है।

यदि कोई अपने यकृत को चौपट करना चाहे तो मांसाहार उसका सहज उपाय है क्योंकि हर प्रकार के मांस में यूरिक एसिड अवश्य होता है। मैनचेस्टर के अध्यापक हाल ने दिखला दिया है कि आध सेर गो-मांस में एक माशा यूरिक एसिड होता है। मछली, मांस और मुर्ग इत्यादिक में यूरिक ऐसिड बहुतायत

से पाया जाता है। हर २४ घंटे में प्राय ४ माशा यूरिक एसिड बनता है जिसका पंचमांश अर्थात् ३ रत्ती यकृत नष्ट कर पाता है परंतु गोमांस, पशुओं के यकृत और अन्य प्रकार के मांसों के खाने स यूरिक ऐसिड सहज ही में दूना हो जाता है। सम्भव है कि कुछ वर्षों तक मांस इत्यादि खाने पर भी यकृत तथा अन्य पचाने वाले अवयव प्रौढ़ होने के कारण अपना काम करते जायँ परन्तु जल्द या देर में ऐसा समय अवश्य आवेगा जबकि यकृत इत्यादि थक कर अपना काम छोड़ देंगे और तब भिन्न प्रकार के रोग कब्जा कर लेंगे और जवानी ही में बुढ़ापा आ जावेगा।

यकृत का आत्मत्याग प्रशंसनीय है क्योंकि यह रक्त के विषैले पदार्थों का भी शरीर के शेष भाग में सचालन नहीं होने देता, या तो इन्हें नष्ट कर देगा और अगर वस न चला तो अपने अन्दर के गोदाम में भर देगा। यही कारण है कि जब कोई बड़ा शराबी नशे में ही मर जाता है तो उसके शरीर के सब भागों से अधिक शराब यकृत ही में पाई जाती है। इसी तरह जो लोग पारा, संखिया या अन्य कोई धातु वाले विष खाकर मरते हैं, उनका यकृत जितना विष अपने अन्दर रख सकता है रख लेता है और पहिले अपने को मार लेता है तब मनुष्य को मरने देता है। इससे यह भी समझ लेना चाहिये कि सरसों, मिर्च चरपरी चटनी और गरम मसाले खाने से यकृत को बड़ी हानि पहुँचती है।

यकृत के इतना परोपकार करने पर भी इसको लोग वहुत से मानव रोगों का कारण वतलाते हैं जिसके लिये यह कदापि जिम्मेवार नहीं। उचित परामर्श तो यह है कि अपने यकृत की वगावर रक्षा कीजिये और यह आपकी सदैव रक्षा करेगा, कभी थकेगा नहीं और आपके लिये जान तक दे देगा। एक प्रसिद्ध फ्रेंच वैद्य ने वतलाया है कि जिन (Gin) लिवर अक्सर उन्हीं लोगों मे पाया जाता है जिसने कभी शराव छुई नहीं। उनके प्रयोगों द्वारा पता लगा है कि जिन (Gin) नामी शरीर में जितना जिन लिवर उत्पन्न करने की शक्ति है मिर्च में उसकी छै गुनी और सिरके में उसकी दूनी होती है। जिन लोगों को नित्य कब्ज रहती है उनके पेट, उनके आमाशय और आँतों में भोजन सडता रहता है और खमीर उठती रहती है जिससे वहुत से विष उत्पन्न होते रहते हैं। यह विष लिवर में भर जाते हैं और उसको वेकार कर देते हैं जिससे कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है।

त्वचा

शरीर-शास्त्र वेत्ताओं का कथन है कि यदि शरीर की कुल खाल निकाल ली जाय और फैलाई जाय तो उसका क्षेत्रफल पूरा २० वर्ग फीट होगा। केवल नेत्रों ही द्वारा देखने से शरीर की यह चादर विशेष मनोरंजक नहीं मालूम होगी। परन्तु यदि खुर्दबीन द्वारा देखी जाय तो इसकी बनावट बहुत पेचीदा और कौतुकमय जान पड़ेगी। इसका बाहरी भाग छोटे छोटे, चपटे चपटे टुकड़ों की बहुत सी तहों से बना हुआ है। यह टुकड़े एक दूसरे के ऊपर इस प्रकार थोड़ा थोड़ा ढकते चले गये हैं जिससे कि नीचे के अधिक कोमल त्वचा के लिये यह रक्षक का काम देते हैं। खाल के भीतरी भाग में वे पदार्थ होते हैं जिनसे कि यथार्थ त्वचा बनी होती है और इन पदार्थों में लचीले सूत्रों की जाली होती है जिसके कारण कि खाल फैल सकती है। जैसे जैसे शरीर बढ़ता चलता है खाल भी फैल फैल कर शरीर पर चढ़ती जाती है। इस जाली के सिवाय बाहरी खाल में इस जाली ही के छिद्रों में फैली हुई बहुत सी ज्ञान-तन्तुयें होती हैं जिनके कारण स्पर्श से मालूम करने की शक्ति और ताप-परिमाण (temperature) से जानने की शक्ति आती है। परन्तु खाल में सबसे बड़े महत्व की वस्तु पसीने के मांस पिंड हैं। यह असंख्य संख्या में छोटी छोटी नलियों के रूप में विराजमान

रहते हैं। हर एक नली की लम्बाई एक इञ्च से भी छोटी होती है। इसके नीचे का भाग खाल में बहुत दूर तक गहराई में लिपटा रहता है और ऊपरी हिस्सा टेढ़ा होकर बाहर की ओर निकल आता है।

खाल से निम्न लिखित लाभ होते हैं —

(१) रक्षा—यह उष्णता के लिये (non-conductor) है अर्थात् गर्मी इससे मिली हुई वस्तुओं में इसके द्वारा जल्दी नहीं पहुँच सकती। इस प्रकार यह अन्दर के कोमल तन्तुओं को गर्मी सर्दी के परिवर्तनों से रक्षा करती है। यदि खाल न होती तो बाहर की गर्मी सर्दी लगने से बाहर के तन्तुओं को बड़ी हानि पहुँचती परन्तु खाल चिमड़ी होने के कारण गर्मी सर्दी को अन्दर नहीं पहुँचने देती।

(२) श्वासोच्छ्वास—फेफड़ों की तरह खाल भी एक ऐस अवयव है कि साँस लेने के काम आता है। मेंढक अपनी खाल द्वारा बड़े जोरों से साँस ले सकता है। यहाँ तक कि यदि इसका फेफड़ा निकाल लिया जाय तब भी कई दिन तक यह जीता रह सकता है। मनुष्य की खाल साँस लेने में इतनी तेज नहीं जितनी कि मेंढक की, परन्तु इस विषय में भी इनका कार्य इतने महत्व का है कि हम इसका विशेष वर्णन किये बिना नहीं रह सकते। जब कभी खाल के साँस लेने में बाधा पड़ेगी, बीमारी आ

दबोचेगी और यह बाधा जभी पड़ती है जब इसकी सफाई की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। खाल को अशुद्ध पदार्थों से भरे रहने देना वैसा ही गला घोंटना है जैसा गर्दन को दबा देना या कमर को कस देना।

(३) गन्दगी निकालना—खाल एक गन्दगी निकालने वाला अवयव है। पसीनों के द्वारा यह शरीर की नमालूम कितनी गंदगी निकालती है। इसका प्रमाण यह है कि जो मनुष्य नमक बहुत खाते हैं उनका पसीना नमकीन हो जाता है।

(४) ताप परिमाण—शरीर के ताप परिमाण घटाने बढ़ाने में खाल बड़ी सहायता देती है। शरीर के भीतर का ताप हमेशा प्राय १०० डिगरी रहता है। इसके ऊपर बाहर की गर्मी सर्दी का कोई असर नहीं रहता। बाहर की गर्मी बढ़ कर ३०० डिगरी हो जाय या घटकर ९० डिगरी रह जाय। इसका कोई प्रभाव अन्दर की गर्मी पर नहीं पड़ता। पसीने के मास पिंडों द्वारा पसीना निकला करता है और बाहर आने पर यह नमी भाप बनकर उड़ जाती है, और तब शरीर इस योग्य होता है कि बाहर कितनी ही गर्मी हो बरदाश्त कर सकता है।

(५) ज्ञान—खाल ज्ञान का भी अवयव है क्योंकि यह हमको पदार्थों के रूप, ताप, परिमाण, और दबाव इत्यादि के विषय में सूचना देता है, कहीं दर्द होने पर खाल द्वारा ही हमें सूचना मिलती है जिससे हम होशियार हो जाते हैं और शरीर के हर अवयवों को हानि से बचाने का प्रयत्न करते हैं।

———

गुर्दे

शरीर के तन्तुओं में जकड़े हुये उदर कुक्षि के ठीक पीछे और आमाशय से थोड़ा नीचे दो बड़े महत्व के अवयव होते हैं जिनको सर्वसाधारण गुर्दे कहते हैं। यद्यपि शकल सूरत मे यह खाल से बिलकुल विभिन्न हैं तथापि कुछ बातों में खाल से इनका गहरा सम्बन्ध है। गुर्दे विशेषत छोटे-छोटे गोल गोल कोष्टकों से बने होते हैं। हर कोष्टक से एक कोमल नली निकलती है। यह नलियाँ गुर्दे के बाहरी भाग से अन्दर की ओर चली जाती हैं और जैसे-जैसे केन्द्र के निकट पहुँचती हैं मिल मिल कर बड़ी-नलियाँ बनती जाती हैं। केन्द्र पर यह एक बड़ी प्याली मे जा मिलती हैं जिससे कि एक बड़ी नली मूत्राशय तक चली जाती है। इन कोष्टकों और नलियों का काम यह है कि रक्त में से उन सब विषैले पदार्थों को जिनसे मूत्र बनता है अलग करदें। यह सब मूत्र मूत्राशय में एकत्रित होता है जहाँ से समयानुसार मनुष्य इसे निकाला करते हैं।

गुर्दों का सबसे बड़ा कार्य एक महान विषैले पदार्थ को जिसे (Urea) कहते हैं रक्त से हटा कर बाहर करने का है। जिसके हटाने की चाल हर २४ घंटे मे आधी छटांक है। गुर्दे रक्त के बहाव को भी बढ़ाने घटाने में बड़ी मदद देते हैं। यदि हम बहुत

पानी पियें तो मूत्र का परिमाण बढ़ जायगा, क्योंकि पानी रक्त को जितना चाहिये उससे अधिक पतला कर देता है जिससे कभी कभी पानी पीने के कुछ मिनट बाद ही मूत्र का परिमाण बहुत बढ़ जाता है।

किसी व्यक्ति के मूत्र में (Urea) का परिमाण उस व्यक्ति के आहार तथा व्यायाम इत्यादि की आदातें पर अधिक निर्भर होता है। जो लोग मांस ख़ूब उड़ाते हैं उनके मूत्र में (Urea) यूरिया अत्यधिक होता है क्योंकि खाये हुये मांस के अधिकांश को शरीर के तन्तु सोखते नहीं इसलिये यह तुरन्त विषैले पदार्थों में परिवर्तित हो जाता है जो मूत्र द्वारा तुरन्त हटा दिया जाता है।

यदि मूत्र में एक श्वेत गुलाबी या लाल कण दिखलाई पड़ जाय तो यह इस बात का प्रमाण है कि मूत्र में यूरिक एसिड या इसी तरह के और विषैले पदार्थ अधिक परिमाण में वर्तमान हैं और बतलाता है कि या तो वह व्यक्ति ऐसे पदार्थ खाता है जिनमें यूरिक एसिड अधिक है जिससे उसका शरीर इस पदार्थ से ठसाठस भर गया है, या उसके गुर्दे तथा अन्य अवयव इतने शक्तिहीन हो गये हैं कि अपने यूरिक ऐसिड नष्ट करने के काम को भली भाँति नहीं कर सकते। गुर्दे और यकृत साधारणत शरीर मे उत्पन्न हुये कुल यूरिक ऐसिड के केवल पंचमांश को ही नष्ट कर सकते हैं। इस पचमांश का परिमाण २४ घंटे में प्रायः ६ रत्ती होता है। मैनचेस्टर के अध्यापक, हाल और

लण्डन के डाक्टर हेग के अन्वेषणों के अनुसार ३ पाव गोमांस में प्रायः डेढ़ मासा यूरिक ऐसिड होता है। जबकि गुर्दों के सर इतने अधिक यूरिक ऐसिड के हटाने का भार होता है तब वह अपना काम उचित रीति से नहीं कर सकता और शरीर में इस विष का ढेर लगता जाता है जिससे वात रोग, गठिया इत्यादिक कितने ही यूरिक ऐसिड वाले रोग हो जाते हैं। होते होते गुर्दों को स्वय बड़ी हानि पहुँचती है और दर्द गुर्दा इत्यादिक रोग किसी न किसी रूप मे दिखलाई देते हैं। थोड़े ही दिनों में जलन्धर हो जाता है, सांस जल्द जल्द आने लगती है, बदन फूल जाता है और रोगी मर जाता है। केवल फल अन्न इत्यादिक खाने से, नमक छोड़ देने से और भोजन करने के एक घंटे पहिले और रात में सोने के आध घंटे पहिले खूब गर्म पानी पीने से गुर्दों के बहुत से रोग दूर हो जाते हैं।

जब मूत्र में बहुत बुरी बदबू आये वा चुनचुनाहट हो तो किसी अच्छे डाक्टर को दिखलाना चाहिये, विशेषतः उसी समय जब कि ऊपर लिखे हुये ढंग से गरम पानी पीने से भी रोग दूर न हो।

———

मस्तिष्क

एक साधारण पुरुष के मस्तिष्क का वज़न डेढ़ सेर होता है और स्त्री के मस्तिष्क का वज़न उसके शरीर के वज़न के समान कुछ कम होता है। यदि हम मस्तिष्क पदार्थ के एक छोटे से कण का खुर्दबीन द्वारा निरीक्षण करें तो मालूम हो जायगा कि यह छोटे-छोटे अपूर्व जीवित कोष्टकों से बना हुआ है। जिनमे से कुछ तो मेंढकों के लम्बे दुमवाले बच्चों के समान होते हैं और कुछ ऐसी मकड़ियों के समान जिनकी टाँगे इधर उधर उठी हुई हों। ये कोष्टक इतने छोटे होते हैं कि यदि पाँच सौ एक लाइन में रक्खे जावें तो केवल एक इंच लम्बे होंगे। परन्तु इनमें से हर एक जीवित रहता है और कुछ न कुछ काम हर एक के सुपुर्द होता है। यदि हम और अच्छी तरह निरीक्षण करें तो पता लगेगा कि इन छोटे छोटे जीवों की उँगलियाँ (या दुम कहिये) जब ये मस्तिष्क में स्वाभाविक प्रकार से रहते हैं, बहुत लम्बी होती हैं और शरीर के चारों ओर फैली रहती हैं। इन उँगलियों में कुछ तो इतनी छोटी होती हैं कि यदि दस करोड़ को एक साथ रखकर बण्डल बनाया जाय तो वह हम लोगों के केवल अँगूठे के बराबर मोटा होगा। ऐसी २ सहस्रों उँगलियों के मिलने से ज्ञान तन्तु बनते हैं। और इन्हीं से रीढ़ के बीच वाले ज्ञान रज्जु का अधिक भाग भी बनता है। इसी ज्ञान रज्जु द्वारा मस्तिष्क शरीर के हर भाग से मिला रहता है।

जब हमारी उंगली की नोक पर आलपीन चुभती है तो हमें दर्द मालूम होता है इसका कारण यह है कि मस्तिष्क में कुछ थोड़े से छोटे छोटे कोष्टक ऐसे हैं जिनसे कि लम्बे लम्बे बालों की तरह महीन तार निकल कर फैलते जाते हैं और खाल में पहुँच कर खतम हो जाते हैं। जब आलपीन चुभी तो इस तार द्वारा मस्तिष्क के कोष्टकों को खबर हुई और उसने समझ लिया कि उँगली में दर्द है। इन विचित्र छोटे छोटे कोष्टकों को हम लोग ज्ञान कोष्टक कहते हैं।

योग्य वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मस्तिष्क और रीढ़ के बीच वाले ज्ञान रज्जु कुल मिल कर प्राय: एक अरब २० करोड़ ज्ञान कोष्टक होंगे। यह आश्चर्यजनक कोष्टक सारे शरीर पर अधिकार रखते हैं। शरीर के और सब अवयव तो मस्तिष्क के सेवक मात्र होते हैं। ये सूक्ष्म कोष्टक अपने लम्बे लम्बे तारों को स्नायु, मांस पिंड, फेफड़े, रक्ताशय, आमाशय, यकृत और अन्य अवयवों में फैलाये रखते हैं और इन्हीं के द्वारा उन अवयवों के पास आज्ञा भेजते हैं जिसके अनुसार कि वे काम करते हैं। दृष्टांत के लिये जब हमें हाथ हिलाने की इच्छा होती है तो मस्तिष्क के वह कोष्टक जिनके तार बाँह के स्नायु तक फैले रहते हैं स्नायु को आज्ञा देते हैं कि सिकुड़ कर हमारी इच्छानुसार काम करें। रक्ताशय धक धक करता है, फेफड़े साँस लेते हैं, यकृत पित्त बनाता है—यह सब अपना काम इसीलिये करते हैं कि इनके ऊपर के अधिकारी ज्ञान कोष्टक

इनको बराबर ऐसा करने की आज्ञा देते रहते हैं। ज्ञान कोष्टक कई प्रकार के होते हैं और हर एक प्रकार के कोष्टकों का विशेष कार्य नियत रहता है जिसे वह किया करते हैं।

ज्ञान कोष्टकों का प्रधान कार्य सोचना और अनुभव करना है। रीढ़ के बीच वाले ज्ञान कोष्टक प्रधानत दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह जो शरीर के बाहर की सब खबरों को अपने तारों द्वारा मालूम कर लेते हैं और फिर इन्हें दूसरे प्रकार के कोष्टकों तक पहुँचा देते हैं। दूसरे प्रकार के कोष्टक अपने तारों द्वारा या तो जहाँ से खबर आई वहाँ के अंगो को या अन्य अंगों को आज्ञा देते हैं जिसके अनुसार ये सब कार्य करते हैं, दृष्टांत लीजिये। जब पैर का तलवा गुदगुदाया जाता है तो पैर आप से आप खिंच आता है और हम कितना ही यत्न करें गुदगुदाते समय स्थिर नहीं रह सकता। नींद में भी होने पर या फालिज मार देने पर भी जब कि हमारी इच्छाशक्ति का अधिकार इस पर नहीं रहता तब भी गुदगुदाने पर यह खिंच जायगा। यह एक सरल प्रकार का सोचना है जिसे हमारे ज्ञान रज्जु के कोष्टक स्वयं कर लेते हैं। इस रज्जु के बढ़े हुये ऊपरी सिरे पर ज्ञान कोष्टकों का एक विशेष संग्रह जिसे मेडुला कहते हैं और उसका 'सोचना कुछ ऊंचे दर्जे का होता है। यह कोष्टक रक्ताशय, आंतों, यकृत और अन्य भीतरी अवयवों की तेजी को घटा बढ़ा सकते हैं। मस्तिष्क के आधार पर भी ज्ञान तन्तु पदार्थ का एक बड़ा कोष रहता है जिसे छोटा मस्तिष्क कहते

हैं और जिसके सुपुर्द उन ज्ञान केन्द्रों की चाल को घटाने बढ़ाने का कार्य रहता है जो स्नायु पर अधिकार रखते हैं और उनसे ढंग के साथ इच्छानुसार काम कराते हैं।

मस्तिष्क के भीतरी भाग पर ज्ञान केन्द्र रक्खे गये हैं जिनके सुपुर्द वह सब अवयव हैं जिनसे हम देखते, सुनते, सूँघते और चखते हैं। इन चीजों के देखने का कारण यह है कि पहले नेत्र पर प्रभाव पड़ता है और तब यह खबर तारों द्वारा मस्तिष्क के आधार पर उन केन्द्रों तक पहुँचाती हैं जिनके सुपुर्द दृष्टेन्द्रिय है और तब इस इन्द्रिय का काम आरम्भ हो जाता है। जिन कारणों से ये केन्द्रक काम करते हैं उन्हीं से हमें ज्योति मिलती है जैसे कि यदि सिर पर चोट पड़े तो आँख के सामने टिमटिमाते तारे ऐसे दिखाई पड़ने लगते है। क्योंकि उन ज्ञान केन्द्रकों पर धक्का पहुँचता है जिनके सुपुर्द देखने का काम है।

ज्ञान तन्तु संगठन के अन्य सब भागों के ऊपर बड़ा मस्तिष्क होता है जो हमारी शक्ति के अनुसार ऊँचे से ऊँचे प्रकार की कल्पना कर सकता है।

मस्तिष्क के इसी भाग द्वारा हम तर्क करने के योग्य होते हैं। यही स्मृति का भी स्थान है। और यही सब मानसिक और सदाचारिक शक्तियों का केन्द्र है। ज्ञान तन्तु विभाग का यह भाग अन्य सब भागों का राजा होता है और यही मन और इच्छा का भी अवयव है।

मस्तिष्क तथा मन

लोग बहुधा यह प्रश्न उठाते हैं कि मन क्या है। हमें इसकी व्याख्या करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। इतना ही कह देना काफी है कि यह मस्तिष्क के कार्यों ही का परिणाम है कि ज्ञान कोष्ठक ऊँची से ऊँची कल्पना कर सकते हैं। मस्तिष्क के कार्यों का परिणाम "विचार" कैसे हो जाता है इस बात का समझना बड़ा कठिन है और उतना ही कठिन यह भी समझना है कि मस्तिष्क के कार्यों के द्वारा स्नायु गति कैसे होती है? या और किसी प्रकार के शक्ति का विकाश कैसे होता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मस्तिष्क मन का अवयव है और इसके कार्यों का मन से घनिष्ट सम्बन्ध है। इस बात के निम्न लिखित प्रमाण यह हैं—

(१) जब किसी रोग अथवा चोट के कारण मस्तिष्क को हानि पहुँचती है तो यद्यपि शेष शरीर पर कोई यथेष्ट आघात न पहुँचे तथापि मन बलहीन हो जाता या नष्ट हो जाता है। जब मस्तिष्क काम करना छोड़ देता है जैसा कि गहरी निद्रा में अक्सर हुआ करता है तो मन भी और साथ ही साथ चेतनता भी अपना काम छोड़ देती है।

(२) किसी जीव की मानसिक शक्ति का अधिक या कम होना इस बात पर निर्भर है कि उसके शरीर के हिसाब से मस्तिष्क

का सोचने वाला भाग बड़ा है या छोटा। मनुष्य की मानसिक शक्ति सब जीवों से अधिक है और इसका कारण यह है कि और जीवों की अपेक्षा सोचने वाले ज्ञान कोष्टक उसके मस्तिष्क में कहीं अधिक हैं। कितने पशु ऐसे हैं जिनके मस्तिष्क मनुष्यों के मस्तिष्क से बहुत बड़े होते हैं मगर उनमे कोई ऐसा नहीं जिसके शरीर को देखते ही मस्तिष्क का सोचने वाला भाग इतना बड़ा हो जितना कि मनुष्य का। यह भी देखा गया है कि मनुष्य मनुष्य में भी शरीर को देखते हुये जिसका मस्तिष्क सबसे बड़ा होगा उसकी मानसिक शक्ति भी सबसे बलवान होगी। दृष्टांत लीजिये यदि किसी मनुष्य का मस्तिष्क दो सेर का है तो उस मनुष्य की अपेक्षा जिसका मस्तिष्क साधारण मस्तिष्कों के समान डेढ़ सेर ही है उसके दार्शनिक होने की या अद्भुत मानसिक शक्ति रखने की सम्भावना है। और इसमे सन्देह नहीं कि जिस मनुष्य का मस्तिष्क केवल सेर है वह वज्र मूर्ख होगा।

स्त्रियों के मस्तिष्क पुरुषों के मस्तिष्क से छोटे होते हैं। साधारणतः स्त्री का मस्तिष्क पुरुष के मस्तिष्क से तीन छटाँक कम होता है। परन्तु स्त्रियों के शरीर भी पुरुषों के शरीर से साधारणतः छोटे होते हैं।

मनुष्य का मन जिसमें आविष्कार, कल्पना, तर्क, विवेक और इच्छा करने की अद्भुत शक्ति है स्वयं इस बात का प्रौढ़ प्रमाण हैं। एक बृहद दैवी मन या दैवी मानसिक शक्ति अवश्य होगी जिससे कि सब प्रकार के जीवन सब प्रकार का बल सब प्रकार की मानसिक शक्तियाँ निकली हुई हैं। मस्तिष्क कल्पना को बनाता नहीं यह तो केवल इसका स्वागत करता है इसे पहिचानता है और इससे काम लेता है।

नेत्र

प्राय: सब प्रकार के जीवों मे कुछ न कुछ ज्ञान तन्तु ऐसे होते हैं जिन पर थोड़ी भी ज्योति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। जेली फिश नाम की मछली भी जिसमें ज्ञान तन्तु नाम मात्र के लिये होते हैं और जो बिलकुल नेत्रहीन होती है धूप में अत्यंत प्रसन्न रहती है और सूर्य के मेघाच्छादित हो जाने पर व्याकुल हो जाती है।

क्या आपने कभी जोंक देखी है। यह एक विचित्र प्रकार का जीव है जिसे डाक्टर लोग फोड़े फुसियों में से थोड़ा रुधिर निकालने के लिये लगाया करते हैं। यदि इस अद्भुत जीव का हम भली प्रकार निरीक्षण करें तो पता लग जायगा कि इसके मुख के छोटे छिद्र से मिले हुये बड़े ही सूक्ष्म लाल लाल धब्बों की एक अर्धवृत्ताकार पंक्ति है। यही धब्बे इसके नेत्र हैं और यदि इनमें से किसी एक को हम खुर्दबीन द्वारा देखें तो मालूम होगा कि हर धब्बे में थोड़ा काला रंग है और उसके ऊपर खाल की एक बहुत ही पतली झिल्ली लगी हुई है। इस झिल्ली और रंग के बीच में एक अत्यंत कोमल झिल्ली होती है जिसमें दृष्टि के ज्ञान तन्तु पाये जाते हैं। ये ज्ञान तन्तु नेत्र के धब्बों से लौट कर छोटे मस्तिष्क तक पहुँच जाते हैं जहाँ यह सब मिलकर उन विशेष ज्ञान कोष्टकों में लीन हो जाते हैं जिनके सुपुर्द दृष्टि इन्द्रिय होती है।

जोंक की दृष्टि—इन्द्रिय की कल बहुत ही सादी होती है परन्तु मनुष्य के नेत्रों की भी ठीक ऐसी ही बनावट है। हमारे नेत्र की पुतली में भी पीछे की तरफ काला अस्तर है और आगे साफ़ शफ्फाफ झिल्ली।

इस कोमल अस्तर के ठीक अन्दर वह झिल्ली फैली हुई है जिसमें कि दृष्टि के ज्ञान तन्तु रहते हैं। इस झिल्ली और सामने की झिल्ली के बीच मे कुछ ऐसे साफ शफ्फाफ़ पदार्थ भरे हुये हैं जिनसे कि ज्योति बड़ी आसानी से निकल जाती हैं। आगे ही की तरफ साफ़ झिल्ली के ठीक पीछे एक छोटा पर्दा होता जिसके बीच मे एक छिद्र होता है जो ज्योति के अधिक और कम होने में पर क्रमशः सिकुड़ता है और फैलता है जिससे कि बहुत चमकीली ज्योति पड़ने से जो हानि दृष्टि के कोमल ज्ञान तन्तुओं को हो सकती हो उससे उनकी रक्षा हो। यहाँ स्थान नहीं है कि हम नेत्र के उस पेचीदा संगठन का अध्ययन कर सकें जिनके द्वारा नेत्र दूर की या निकट की वस्तुयें देख सकते हैं।

हमारे जीवन की यह बहुत बड़ी आवश्यकता है कि नेत्रों की रक्षा के उपाय किये जायँ। इस सम्बध में कुछ ऐसे नियम हैं जिनका पालन करना अत्यंत लाभदायक होगा। इनमें सबसे बड़ा नियम यह है कि जब बनावटी ज्योति में बारीक काम करना हो तो लम्प या मोमबत्ती इस प्रकार रक्खी जाय कि ज्योति उस काम पर पीछे से बायें कन्धे के ऊपर से आकर पड़े क्योंकि यदि ज्योति सामने से आयेगी तो वह सीधी आँख पर चमकेगी और

पुतलियाँ सिकुड़ जाँयगी जिससे अच्छी प्रकार दिखाई न देगा और बार-बार आँख पर इस प्रकार ज़ोर पड़ने से आँखे उठ आयेंगी और दृष्टि के नष्ट हो जाने का भी डर है। ज्योति का बायें कन्धे के ऊपर से आना भी अति आवश्यक है, क्योंकि साधारणत' दाहिना हाथ ही बारीक कामों मे काम करता है और यदि ज्योति भी दाहिनी ओर से ही आवे तो हाथ या कलम की परछाहीं अँधेरा कर देगी। बाईं ओर से ज्योति आने पर ऐसा नहीं हो सकता।

बहुत अच्छी बात हो कि यदि मोटर में बैलगाड़ी में इक्के पर घोड़े गाडी पर और बस, ट्रैम, रेल इत्यादि पर बैठे हुये या ऐसी अवस्था में जब कि पुस्तक या कागज़ दृढ़ता से पकड़ रखना असम्भव हो नेत्र पढ़ने लिखने के लिये न इस्तेमाल किये जायँ। जब नेत्रों की ज्योति धुँधली माल्रुम हो या नेत्र खोलने पर दर्द हो या नेत्रों से काम करने से सिर में दर्द हो जाय तो किसी होशियार नेत्र के डाक्टर से सलाह लेनी चाहिये जोकि नेत्रों की भली प्रकार परीक्षा कर ले और भविष्य में उनकी रक्षा का उपाय बता दे। बहुत सी दशाओं में चश्मों की आवश्यकता पड़ती है। छोटे छोटे बालकों के स्वाभाविक दोषों को दूर करने के लिये चश्मों की आवश्यकता होती है। ये दोष जैसे कि दूर की चीज़ न दिखाई पड़ना या तिरछी दिखाई पड़ना, बिना चश्में के और किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकते।

कान

जहाजों के काई जमे हुये पेदों पर चपटे हुये जीवन विताने वाले वरनेकेल नामी कीड़ों के सबसे सादे कान होते हैं। इस जीव के कान की जगह द्रव पदार्थ से भरी हुई एक बहुत ही छोटी थैली होती है जो कि ऊपरी भाग से मिले हुये और समुद्र जल से भरे हुये हिस्से में होती है। इसी थैली की दीवारों में सुनने के ज्ञान तन्तु होते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस जीव को कान की बहुत ही कम आवश्यकता होती है।

मछली के कान में भी एक छोटी थैली ही होती है जिसमें दो या तीन खड़िया के रंग के पदार्थ होते हैं। जिन्हे हम कान की हड्डियाँ कहते हैं। यह हड्डियाँ जिस थैली में कान वाले द्रव पदार्थ और सुनने के ज्ञान तन्तु होते हैं उसीके पास ही रक्खी गई है। मछली का कान उसकी खोपड़ी के एक खोखले हिस्से में रहता है। जल ध्वनि द्वारा यह सुनता है। पहिले खबर सिर की हड्डियों मे पहुँचती है तब कान की हड्डियों में, तब उस कोमल थैली में जिसमें सुनने के ज्ञान तन्तु होते हैं, और यह तार मस्तिष्क तक खबर पहुँचाते हैं।

मनुष्य के कान यद्यपि मछली और वरनेकेल के समान होते हैं तथापि इनकी बनावट बहुत पेचीदी होती है। खोपडी के एक

गुप्त स्थान में एक विचित्र रूप की थैली होती है जिसमें कि द्रव पदार्थ भरा होता है और कुछ बहुत ही बारीक बारीक कान वाले पत्थर होते हैं। यह थैली हड्डियों की जंजीर द्वारा एक ध्वनि करने वाली झिल्ली से सम्बन्ध रखती है। यही झिल्ली उस नाली को जो बाहरी कान मे जाती है बन्द किये रहती है। कान मे ध्वनि होने से शब्द उत्पन्न होते हैं। बाहरी कान इन ध्वनियों को एकत्र करता है जिससे कि उस झिल्ली में ध्वनि पैदा होती है। इस झिल्ली को नगाड़े के समान होने से कान के नगाड़े की झिल्ली भी कहते हैं। इस ध्वनि को हड्डियों की जंजीर इस झिल्ली वाले स्थान को पार करती हुई कोमल थैली तक ले जाती है जिसमें कान के पत्थर और सुनने के ज्ञान तन्तु होते हैं। यह छोटे छोटे कान के पत्थर ज्ञान तन्तुओं के सिरे पर ऊपर नीचे नाचने लगते हैं और उन भावों को उत्पन्न करते हैं जो कान से मस्तिष्क तक पहुँचाये जाते हैं। इसी उत्पन्न हुई ध्वनि को हम लोग शब्द कहते हैं। कानों की रक्षा करना भी हमारा प्रधान कर्तव्य है।

नाक

नाक हमारे चेहरे पर कभी छिप नहीं सकती और यद्यपि इस अवयव के साथ लोग बड़ी लापरवाही करते हैं तथापि इसमें सन्देह नहीं यह बड़ा ही उपकारी शोभादायक होता है। नाक का यथार्थ काम फेफड़ों को भरने के लिये वायु पहुँचाना है। इसी कारण इसके दो छिद्र होते हैं जो आगे जाकर नाक वाले बड़े खोखले से मिले होते हैं। नाक की बीच वाली हड्डी से उस खोखले के दो भाग हो जाते हैं। और यह दोनों भाग पीछे की तरफ एक दूसरे छिद्र द्वारा मुख में जा मिलते हैं और वहाँ से वायु के फेफड़ों तक जाने के रास्ते बने हुये हैं।

नाक के खोखले के दोनों ओर तीन उभड़े हुये भाग होते हैं जो एक दूसरे के ऊपर रहते हैं। अन्दरूनी चमड़े की झिल्ली इन उभरे हुये भागों को ढके रहती है और नाक के खोखले की छत के अन्य भागों की झिल्ली में सूँघने के ज्ञान तन्तु रहते हैं जिनके कारण हम भिन्न भिन्न प्रकार की गन्ध को पहिचान लेते हैं। सभ्य मनुष्यों में घ्राण इन्द्रिय इतनी तेज नहीं होती जितनी कि पशुओं और जंगली जातियों में, इसका कारण यही है कि मनुष्य नाक के साथ बड़ी लापरवाही करता है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि लोगों को जुकाम अक्सर हुआ करता है जिससे बहुधा घ्राण शक्ति थोड़ी या अधिक नष्ट अवश्य हो जाती है। इस रोग की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

जिह्वा का आनन्द

चखने के ज्ञान तन्तु मुँह के पिछले हिस्से में, जिह्वा में, होते हैं। जब तक कोई पदार्थ मुँह में घुलेगा नहीं उसका आनन्द मिलेगा नहीं। जिह्वा भी खाल की तरह त्वचा का एक अवयव है। सच पूछिये तो इस विषय में वह खाल से भी बढ़ी हुई है। जो पदार्थ कड़वे, नमकीन या तेज़ होते हैं, जैसे सरसों, नमक, मिर्च इत्यादिक, उनको चखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, जिह्वा पर लगने ही से उसका पता लग जाता है। जिह्वा पर इनका उसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है जैसा खाल पर, अंतर इतना ही है कि जिह्वा पर शीघ्र और अधिक पड़ता है। कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जिन पर कड़ी गंध पड़ने के कारण उनके चखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके गंध का आनन्द जब हम उन्हें खाते रहते हैं हमारे सांस वाली नली से होकर नाक में पहुँच जाता है। दो ही प्रकार के पदार्थ चखे जाते हैं मीठे या कडुवे और सब प्रकार के पदार्थ का आनन्द रगड़ का होता है या सूंघने का। चखने की इन्द्रिय का उद्देश यह है कि वह हमें बतलाये कि मुँह में पहुँचे हुये पदार्थ गुणकारी हैं या विषैले। यह नियम सर्व संगत है कि जिन पदार्थों का स्वाद तीखा या कड़ुवा हो वह भोजन के योग्य नहीं होते और यदि थोड़े भी खाये जायँ तो हानि पहुँचने की संभावना है। सरसों, मिर्च, चटनी, सोंठ और साधारण मसाले

सब को विष ही समझना चाहिये। यह सब पाचन करने वाले अवयवों को बड़ी हानि पहुँचाते हैं और इसीलिये इनके विचित्र स्वाद द्वारा प्रकृति हमको आदेश देती है कि इनको पहचान लें और इनसे दूर रहें।

लेनिनग्रेट के प्रसिद्ध शरीर-शास्त्र वेत्ता अध्यापक पावलो ने बतलाया है कि पाचन शक्ति पर स्वादु की इन्द्रिय का विचित्र प्रभाव पड़ता है। भोजन में विद्यमान स्वाद चखने के ज्ञान तन्तुओं को तीव्रगामी बना देता है जिससे कि जठराग्नि वाले मांस पिंडों से बडे ही तेज जठराग्नि अर्क निकलने लगते हैं इनको इन अध्यापक महाशय ने दैवी अर्क कहा है इस अर्क से भोजन और अर्कों की अपेक्षा बहुत जल्द पचता है। इस बात से दो बड़ी शिक्षायें हमें मिलती हैं, पहली तो यह कि भोजन इतना स्वादिष्ट होना चाहिये जिससे स्वाद की इन्द्री पर जोर पड़े। दूसरे यह कि भोजन इतनी देर तक मुँह में रक्खा जाय और चबाया जाय कि जिससे उसका पूरा स्वाद और आनन्द मिल जाय। जब भोजन इस प्रकार खाया जायगा तब हर ग्रास से दैवी अर्क निकलेगा जो भोजन को अच्छी तरह पचा देगा।